गोरक्षनाथ प्रणीतः
गोरक्ष शतकम्

(हिन्दी अनुवाद सहित)

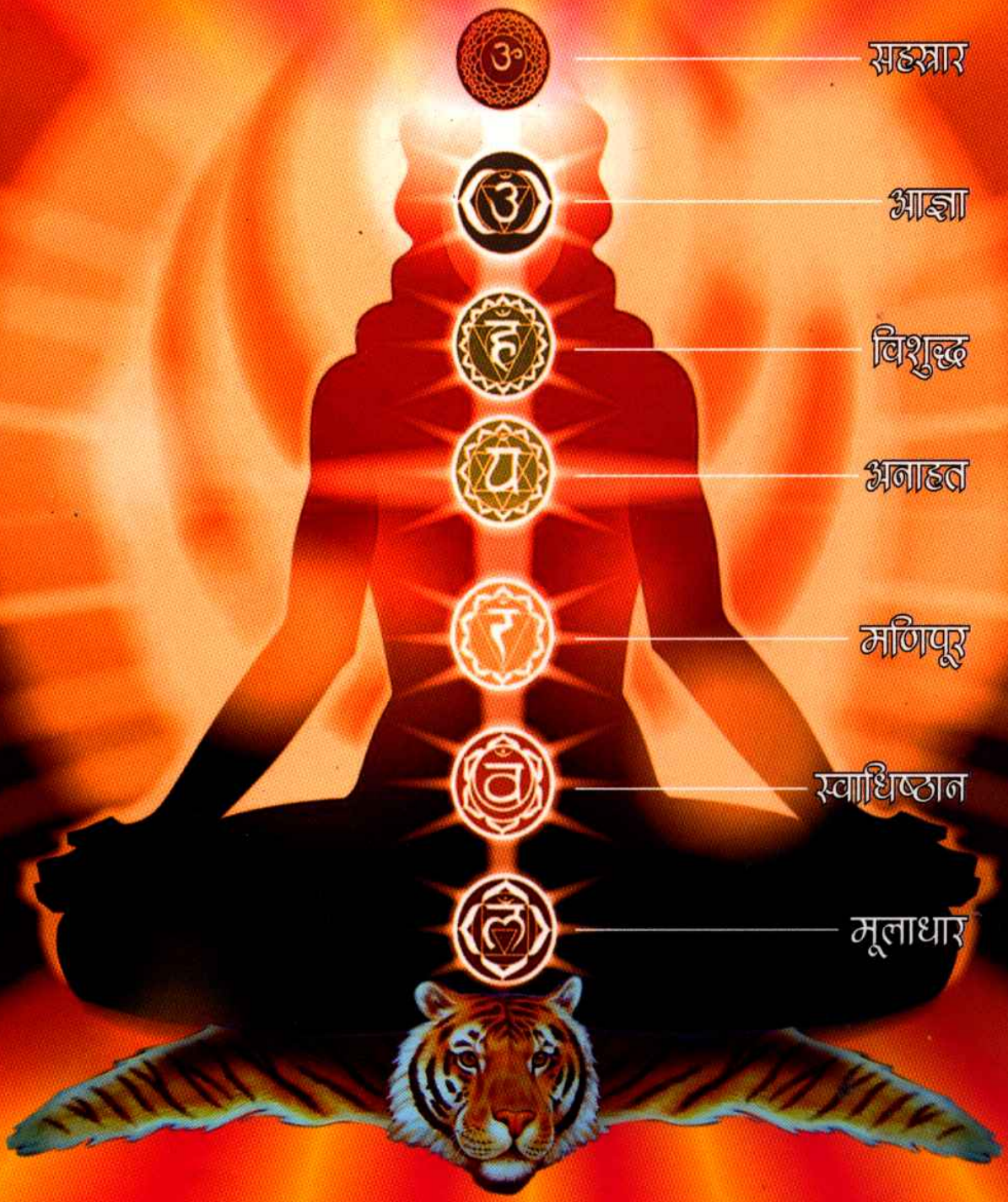

अनुवादक : डॉ. मोतीलाल खड्डर शास्त्री (मास्टरजी)
प्रकाशक : श्री पीताम्बरा पीठ, दतिया (म.प्र.)

शिव अवतार श्री गुरू गोरखनाथ

ॐ

ॐ श्री परमगुरूवे गोरक्षनाथाय नमः

गोरक्षनाथ प्रणीतः
गोरक्षशतकम्

(हिन्दी अनुवाद सहित)

卐 अनुवादक 卐

मोतीलाल खड्डर शास्त्री (मास्टरजी)

:: प्रकाशक ::

श्री पीताम्बरापीठ, दतिया - ४७५६६१ (म.प्र.)

प्रकाशक : **श्री पीताम्बरा पीठ**
दतिया (म.प्र.)

संस्करण : प्रथम संस्करण (१००० प्रतियां)
२८ सितम्बर सन् २०११
शारदीय नवरात्र संवत् : २०६८

मूल्य : पच्चीस रूपये मात्र (२५/-)

मुद्रक : शिवशक्ति प्रेस प्रा. लि.
बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन,
ग्रेट नाग रोड, नागपुर-९

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

जगज्जननी भगवती पीताम्बरा माता

पीताम्बरां विघ्नहरां प्रणम्य,
गोरक्षनाथं सिद्धेशमीडे।
ययोः कृपातो ग्रथितो सुलेखः
ताभ्यां सश्रृद्धोऽयं समर्पयेऽहम्
योगैक गम्यां निहितात्मविद्यां
ज्ञातुं न शक्तः सहसा वुधोऽपि
तथापि मन्देन कृतः प्रयासः
सतां सदाशंसनमातनोतु।।

- अनुवादकः

प्रकाशकीय

राष्ट्रगुरु श्री पीताम्बरा-पीठाधीश्वर पूज्यपाद श्री स्वामीजी महाराज के शुभाशीर्वाद एवं जगज्जननी भगवती पीताम्बरामाता, की असीम अनुकम्पा से श्री गोरक्षनाथ प्रणीत **'गोरक्ष शतकम्'** हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित कर पीताम्बरापीठ अत्यधिक आनन्द का अनुभव कर रही है।

प्रस्तुत ग्रन्थ गोरक्ष शतकम् के सौ श्लोकों में हठयोग के गंभीर विषयों को श्री गोरखनाथ ने सरल तथा सहजरूप में अभिव्यक्त किया है वैसा ही सुन्दर अनुवाद पूज्यपाद श्री स्वामीजी महाराज के कृपा पात्र एवं पीठ के अनन्य सेवक डॉ. श्री मोतीलाल खड़ुर शास्त्री (मास्टरजी) द्वारा किया गया है, जो हृदयहारी है।

आशा है इस ग्रन्थ के प्रकाशन से न केवल विद्वान पाठकों को संतोष होगा अपितु योग साधकों का भी पथ प्रदर्शन होगा।

श्रीमती रेणु शर्मा
मंत्री
श्री पीताम्बरा पीठ
दतिया (म.प्र.)

शारदीय नवरात्र
२८ सितम्बर २०११

– अनुक्रमणिका –

शिवअवतार गुरु गोरखनाथजी चित्र
प्रकाशकीय
स्वामीजी महाराज चित्र (समर्पणम्)
जगज्जननी माँ पीताम्बरा चित्र

विषयानुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ सं.
१.	उपक्रम एवं शुभाशंसनम् (आचार्य भागवतानन्द सरस्वती)	७
२.	शुभाशीर्वाद (स्वामी देवनायकाचार्य समदर्शी)	८
३.	शुभं भवतु ('प्रणव' वानप्रस्थी) (प्रो. इच्छाराम द्विवेदी)	९-११
४.	प्रस्तुति (डॉ. मारुतिनन्दन पाठक)	१२-१७
५.	गोरक्षशतकम् संस्कृत श्लोक १ से १०१ तक हिन्दी सानुवाद सहित	१८-३७

ॐ

ॐ श्री परमगुरूवे गोरक्षनाथाय नमः

गोरक्षशतकम्

ॐ श्री गुरुवे नमः

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु

◆

गुरुर्देवो महेश्वरा

◆

गुरुर्साक्षात् परब्रह्म

◆

तस्मै श्री गुरुवे नमः

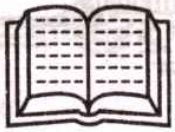

अनन्त श्री विभूषित राष्ट्रगुरु पीताम्बरा पीठाधीश्वर परमपूज्य श्री स्वामीजी महाराज, दतिया (म.प्र.)

卐 समर्पणम् 卐

शतशः स्वगुरुं नत्वा तथा पीताम्बराम् जनिम्।
यत्कृपातोऽभवत्पूर्णोऽनुवादः शतकस्य च।।
वन्दे स्वगुरूपीठं वै मोतीलालोऽह मानतः।
सकृदप्यनुशीलेन सिद्धिर्भवति सर्वदा।।

अनुवादकः

◆ उपक्रम एवं शुभाशंसनम् ◆

"गोरक्षनाथप्रणीतः गोरक्षशतकम्" नामक ग्रन्थ केवल संस्कृत में ही उपलब्ध है। इसका अक्षरशः अनुवाद तो नहीं, किन्तु प्रत्येक श्लोक का पद्यार्थ, भावार्थ हमारे डॉ. मोतीलाल खड्डर शास्त्री 'मास्टरजी' ने लिखा है जो विज्ञ सुधी पाठक जनों के लिए बड़ा ही रोचक है। मोतीलाल मास्टरजी शाक्त तन्त्र साधना जैसे तन्त्र के रहस्यात्मक ग्रन्थों के प्रणेता हैं। इस गोरक्ष शतकम् में मुख्य रूप से कुण्डलिनी प्रकरण के सभी चक्रों का वर्णन, अष्टाङ्ग योग का विशद प्रतिपादन किया है। भगवान् विश्वनाथ से मैं प्रार्थना करता हूँ कि माँ जगज्जननी भगवती पीताम्बरा जगदम्बा के पावन चरणों में पूर्ण रूप से समर्पित हमारे मास्टरजी द्वारा लिखित इस गोरक्ष शतकम् को पढ़कर विज्ञ सुधी पाठक जन बहुत लाभान्वित होंगे। उनकी गति, मति, रति, धर्ममय होगी।

- आचार्य भागवतानन्द सरस्वती

!! श्रीमत् रामानुजाय नमः !!

श्रीमद्भगवत् गीता साप्ताहिक अखण्ड पाठ एवं प्रवचन के अधिष्ठाता

卐 शुभाशीर्वाद 卐

संस्कृत भाषा हमारी संस्कृति की महान धरोहर है। हमारे जितने भी मनीषी हुंये है उन्होंने मानव समुदाय के कल्याण हेतु बड़ा सुन्दर तरीका बताया है। वर्तमान समय में उस (तरीके) तत्व को समझाने वाला नहीं है।

सभी कुछ जानकारी के लिये संस्कृत भाषा में उद्धृत श्री गोरक्षनाथ प्रणीत गोरक्ष शतकम् के १०० श्लोकों के विचारों को लेखक डॉ. मोतीलाल खड्डर शास्त्री (मास्टरजी) ने हिन्दी भाषा में व्यक्त किया है। महर्षि गोरक्षनाथ के विचार और लेखक ने अपने विचार जो उन्होंने हिन्दी भाषा में व्यक्त किये है, जन समुदाय के लिये उपयोगी तथा कर्मकल्याण में सहायक सिद्ध होंगे।

मैं लेखक मास्टरजी को आशीर्वाद देता हूँ कि इसी प्रकार से अन्य मुनीषियों की कृतियों को आम समाज में लावें। वर्तमान समय में इसके महती की आवश्यकता है। अस्तु लेखक के दीर्घायु होने की भी मैं सहृदय कामना करता हूँ।

स्वामी देवनायकाचार्य (समदर्शी)
कम्पिल (फर्रूखाबांद) उ.प्र.

दिनांक १९ फरवरी २०११

★ शुभम् भवतु ★

आचार्य 'प्रणव' वानप्रस्थी, डॉ. इच्छाराम द्विवेदी
अध्यक्ष, पुराणेतिहास विभाग,
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठम्, नई दिल्ली

पीताम्बराचरणपङ्कज चञ्चरीकः
लेभे मुदं "प्रणव" संज्ञक एष लब्ध्वा।
गोरक्षनाथ रचितम् शतकम् पवित्रम्
यत्सानुवाद मतिसुन्दरम द्वितीयम्।।
मोतीलाल विबुधामृत बोधयुक्तम्
भाषानुवादमखिलम् बहुशः पठित्वा।
आशंसते मम मनः शुभमस्तुनित्यम्
गोरक्षनाथ कृपया विबुधस्य तस्य।।
पीताम्बरा पद परागपवित्र देहो
यो मन्त्र-तन्त्र-निगमागम-पूतचित्तः।
मोतीलाल "शुचि" नामधरो महात्मा
योगीश्वरोऽस्तु भुवि साधनचक्रवर्ती।।

निखिल ब्रह्माण्ड वैभवविस्तारिणी चराचर जगत्पालनी सकल-पापक्षयकारिणी, भवसागर सन्तारिणी, शत्रुस्तम्भनकारिणी, हरिद्रासरोवर विहारिणी मातृ श्री पीताम्बरा जगदम्बा के चरणारविन्दयुगल में नित्यनिवास से परिवृतान्तःकरण, अनन्त श्री विभूषित, योगीसम्राट पूज्य चरण सद्गुरुदेव राष्ट्रगुरु श्री के अमोघ आशीर्वाद से आप्लावित साधक श्रेष्ठ श्रीयुत डॉ. मोतीलाल खड्डर शास्त्री (मास्टरजी) द्वारा अनुवादित श्री गोरक्षशतकम् को देखकर अत्यन्त उल्लास हुआ। जैसा महायोगी श्री गोरक्षनाथजी का योगशतक अद्वितीय है वैसाही सुन्दर अनुवाद भी आचार्यवर्य ने किया है। एतदर्थ मैं उनको सहृदय से साधुवाद देता हूँ।

"गोरक्षशतकम्" सिद्धयोगी की वाणी है। इसके द्वारा योगमार्ग के अनेक अनसुलझे प्रश्नों का उत्तर श्री गोरखनाथजी ने दिया है। गोरक्षशतकम् एक सुस्पष्ट तथा निर्भ्रान्त रचना है। इस रचना ने केवल भारतीय मनीषियों को अपनी ओर आकृष्ट किया है अपितु फर्गुहर तथा ब्रिग्स जैसे पाश्चात्य अन्वेषकों को भी चमत्कृत किया है। मथुरानाथ शुक्ल और शंकर पण्डित की टीकायें इस **"गोरक्षशतकम्"** पर प्रसिद्ध है।

एक छोटी सी रचना में कैसे ज्ञान सिन्धु भरा जा सकता है इसका सुन्दर उदाहरण है यह **गोरक्षशतकम्**। अनुवादक ने भी बड़े ही सारगर्भित किन्तु सरल शब्दों में इसका राष्ट्रभाषानुवाद किया है जिससे कि यह और भी बोधगम्य हो गया है।

सिद्धासन और पद्मासन की व्याख्या करते हुये श्री गोरक्षनाथजी ने कहा है-

आसनेभ्यः समस्तेभ्यः द्वयमेव विशिष्यते।
एकम् सिद्धासनम् प्रोक्तम् द्वितीयम् कमलासनम्।।

दोनों आसनों की संरचना पर उनका विवरण अद्वितीय है-

योनिस्थानकमंघ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढं विन्यसेत्।
मेढ्रे पादमथैकमेव नियतं कृत्वा समं विग्रहम्।।
स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्यन् भ्रुवोरन्तरम्।
एतन्मोक्षकवाटभेद जनकं सिद्धासनं प्रोच्यते।।
वामोरूपरि दक्षिणं हि चरणं संस्थाप्य वामं तथा।
दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना धत्वा कराभ्यां दृढम्।।
अंगुष्ठौ हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकयेत्।
एतद् व्याधिविकारहारि यमिनां पद्मासनं प्रोच्यते।।

गोरक्षनाथजी ने अत्यन्त दक्षता से भारतीय योगविद्या का उपदेश किया है। श्रीमद् भागवत महापुराण में शुकदेवजी कहते है-

प्राणायामैः दहेद् दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषान्।।

गोरक्षशतकं का कथन तुलनीय है -

आसनेन रुजो हन्ति प्राणायामेन पातकम्।
विकारं मानसं योगी प्रत्याहारेण सर्वदा।।

धारणा तत्त्व का जैसा सुन्दर विवेचन गोरक्षशतकम् में है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। योग वस्तुतः इस जगत्प्रपञ्च का तत्त्वज्ञान है।

निरातंकं निरालम्बं निष्प्रपंचं निराश्रयम्।
निरामयं निराकारं तत्त्वं तत्त्वविदो विदुः।।

जगत प्रपञ्च में रहते हुये भी गुरुकृपा से प्राप्त योग मार्ग का आश्रय लेकर पञ्चतत्व प्रपञ्च का निरास करते हुये योगी सर्वत्र परमेश्वरान्वीक्षा का स्वभाव विकसित कर लेता है।

न गंधं न रसं रूपं न स्पर्शं न च निःस्वनम्।
आत्मानं न परं वेत्ति योगी युक्तः समाधिना।।

ऐसी सिद्धावस्था में पहुँचते ही योगी जीवन्मुक्त हो जाता है-

खाद्यते न च कालेन बाध्यते न च कर्मणा।
साध्यते न च केनापि योगी युक्तः समाधिना।।

यही अद्वैत की चरम अनुभूति है-

दुग्धे क्षीरं घृते सर्पिरग्नौ वह्नि रिवार्पितः।
अद्वयत्वं व्रजेन्नित्यं योगवित् परमे पदे।।

योगशतक की भाषा चाहे वह मूल संस्कृत हो या मांस्टरजी के द्वारा किया गया भाषानुवाद दोनों ही हृदयहारी है। ऐसे लघुकाय ग्रन्थों की आज मांनव समाज को बड़ी आवश्यकता है। आज के युग में जब योग **"योगा"** बन गया है, योग के कतिपय आसनों का प्रदर्शन करके केवल और केवल धन कमाया जा रहा है, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का उपदेश मात्र इसलिये किया जा सकता है कि भोग की क्षमता बढ़ाई जा सके तब ऐसे समय में जीव और ब्रह्म की एकात्मता को सिद्ध करनेवाले, योग के परम प्रतिपाद्य अद्वैत सिद्धि को देनेवाले गोरक्षशतकम् जैसे ग्रन्थों की महनीय आवश्यकता है।

मैं एक बार पुनः आचार्य श्री मोतीलालजी खड्डर शास्त्री (मास्टरजी) को प्रणाम करता हूँ और उन्हें इस ग्रन्थ के अनुवाद के लिए बधाई देता हूँ। यह ग्रन्थ पाठकों और साधकों का पथ प्रदर्शक बने, यही मेरी शुभकामना है।

गणेशचतुर्थी
१ सितम्बर २०११ ई.
नई दिल्ली

भगवत्च्चरणाश्रित
'प्रणव' वानप्रस्थी
(प्रो. इच्छाराम द्विवेदी)

प्रस्तुति

गोरखनाथ (गोरक्षनाथ) भारत के एक बहुत महान योगी थे, इतने महान कि उन्हें शिव-रूप ही माना जाता था। ऐसा मानना हमारे देश में आदर और सम्मान देने का एक तरीका है। उनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ थे। उनकी प्रतिष्ठा और उनका अवदान ऐसा था कि उनके नाम से योगियों का एक एक सम्प्रदाय-नाथ-सम्प्रदाय-चल पड़ा जिसकी परम्परा आज भी मौजूद है। उनकी एक साधना पद्धति है जो उनकी गुरु-परम्परा में निहित है। साधना, पुस्तकों को देखकर होती भी नहीं, क्योंकि पुस्तकें प्रायः सांकेतिक होती हैं और उनमें विशेषतः सिद्धांन्तों का प्रतिपादन होता है। दूसरी बात यह कि साधना में दीक्षा की आवश्यकता होती है और उस परम्परा की विधियों को भी सीखना होता है। फिर भी पुस्तके सहायक होती है। एक तो उनसे उनके सिद्धान्त, लक्ष्य और साधन तथा दृष्टिकोन का पता चलता है, दूसरे उनके अवदान की जानकारी के साथ अन्य साधना-पद्धतियें के साथ तुलना में भी सहायता मिलती है।

गोरखनाथ की रचनाओं से नाथ सम्प्रदाय की योग-साधना पद्धति को स्थायित्व मिला और वह सुरक्षित भी रहा। गोरखनाथ की संस्कृत रचनाओं में गोरक्षशतक, योगबीज, विवेकमार्तण्ड और सिद्धसिद्धान्त-पद्धति प्रधान है। उन्होंने योग के तत्व को जनमानस तक पहुँचाने तथा लोककल्याण के लिये उस समय की लोकभाषा में भी लिखा था जो गोरखवाणी के नाम से प्रसिद्ध है। नाथ सम्प्रदाय को ही सिद्धामृतमार्ग या सिद्धमत कहा जाता है।

गोरक्षशतक निर्विवाद रूप से गोरखनाथ की रचना है। इसे सभी इस विषय के विद्वान मानते है इस सन्दर्भ में डॉ. जे. एन. फर्कुहर और ब्रिग्स का बड़ा योगदान है। ब्रिग्स की पुस्तक 'गोरखनाथ एण्ड दि कनफट्टा योगीज्' बहुत प्रसिद्ध है। उनके प्रमाण से पता चलता है कि गोरखनाथ की एक पुस्तक गोरक्षपद्धति है जो गोरखकल्प का रूप है उसमें दो सौ श्लोक है। उसका पहला शतक - गोरक्षशतक है जिसका नामान्तर गोरक्षज्ञान, ज्ञानप्रकाशक शतक तथा ज्ञानशतक भी है। दूसरे शतक का नाम योग- शास्त्र है गोरक्षशतक पर शंकर पण्डित और मथुरानाथ शुक्ल की दो टीकाएँ भी उपलब्ध है, किन्तु वे मुझे अभी देखने को नहीं मिली है। महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज की स्पष्ट मान्यता

है कि गोरक्षपद्धति और गोरक्षशतक गोरखनाथ द्वारा प्रतिपादित योग का प्रामाणिक ग्रन्थ है।

गोरक्षशतक की जो पाण्डुलिपियाँ विभिन्न ग्रन्थागारों में उपलब्ध हैं वे सभी छपी भी नहीं है। मुझे दो छपी प्रतियाँ देखने को मिली हैं। एक स्वामी कुवलयानन्द जी द्वारा सम्पादित लोनावाला से छपी है और दूसरी श्री रामलाल श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित गोरखमन्दिर गोरखपुर से छपी है। स्वामी कुवलयानन्द जी योग के अन्वेषक प्रकृति के व्यक्ति थे, जिन्होंने योग से सम्बन्धित कई पुस्तके प्रकाशित की और हठयोग के मूलग्रन्थ भी प्रकाशित किए। उनके द्वारा स्थापित संस्था लोनावाला में आज भी काम कर रही है। स्वामी कुवलयानन्द जी का गोरक्षशतक का संस्करण संमीक्षात्मक है जिसमें पाठ-भेदों का उल्लेख किया गया है। पाठ भेदों का उल्लेख करना महत्वपूर्ण है। पुरानी पुस्तकों में पाठ-भेद हो जाना अस्वाभाविक नहीं है, किन्तु ये पाठ-भेद अर्थ-भेद उत्पन्न नहीं करते। श्री रामलाल श्रीवास्तव गोरखनाथ के साहित्य के अधीत व्यक्ति है और गोरखनाथ पर उनकी पुस्तक भी है। वे गोरखनाथ मन्दिर से प्रकाशित होनेवाली योगवाणी पत्रिका के सम्पादक भी है। उनका गोरक्ष शतक का संस्करण समीक्षात्मक तो नहीं है किन्तु किसी एक पाण्डुलिपि का हू-ब-हू रूप है और शुद्ध भी है। संभव है, गोरखनाथ मन्दिर की परम्परा में यह प्रति उपलब्ध रही हो। गोरखपीठाधीश्वर स्वामी अवेधनाथजी महाराज की दृष्टि में यह संस्करण प्रामाणिक है, क्योंकि उन्होंने अपनी भूमिका में इसी का आधार लिया है और इसके मूल से पर्याप्त उद्धरण दिए है।

दोनों संस्करणों में श्लोकों की संख्या एक सौ एक है, किन्तु मुख्य भेद यह है कि पचास से अधिक श्लोक एक दूसरे से भिन्न हैं अर्थात् एक दूसरे में नहीं हैं। गोरखनाथ मन्दिर वाले संस्करण में अजपाजप का बहुत अच्छा प्रतिपादन है, किन्तु लोनावाला संस्करण में यह बिल्कुल नहीं है। लोनावाला संस्करण में पंचमहाभूत धारणा का सुन्दर प्रतिपादन है जो गोरखनाथ मन्दिर वाले संस्करणों में नहीं है। ऐसे ही कुछ और अन्तर है। वैसे दोनों संस्करणों में गोरखनाथ की योग पद्धति से असम्बन्ध कुछ नहीं हैं। सभी विषय सम्बन्ध है, किन्तु विषयगत और प्रतिपांदनगत थोड़े अन्तर के कारण एक दूसरे में एक अभाव की प्रतीति अवश्य होती है।

गोरक्षशतकम् का प्रस्तुत संस्करण जिसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है, वह लोनावाला-संस्करण के आधार पर है, इसका सम्बन्ध गोरखनाथ मन्दिर वाले संस्करण से नहीं हैं इसका हिन्दी अनुवाद किया है- डॉ. मोतीलाल खड्डर शास्त्री (मास्टरजी) ने, जो पीताम्बरापीठ, दतिया से जुड़े हैं यह अनुवाद मूल से यथासंभव सम्बद्ध है इसलिये मूल पाठ को समझने के लिये बहुत अच्छा और बहुत उपयोगी हैं यह टीका या व्याख्या नहीं है, इसमें बहुत विस्तार की आवश्यकता होती है। पहली अपेक्षा होती है मूल से परिचित होने की जिसके लिये मूल से सम्बद्ध अनुवाद अपेक्षित है और विस्तार का द्वार तो कई माध्यमों से खुला रहता है।

गोरक्षशतकम् में योग और तंत्र के साधनों का सामञ्जस्य है। इसमें तंत्र के कतिपय योगपरक साधन समाहित है अजपाजप और कुण्डलिनी योग वस्तुतः तंत्र की ओर से आये साधन हैं तंत्र और योग में आरम्भ से सामीप्य है जहां भेद करना कठिन होता है जो साधना की पुष्टि की दृष्टि से उत्तम संकेत है। गोरखनाथ का योग जो हठ योग के रूप में भी विकसित हुआ, तंत्रयोग के आधार पर हुआ, यह असंदिग्ध है।

गोरक्षशतक में योग के छः अंग माने गये हैं जो आसन से आरम्भ होकर समाधि तक हैं। इसका कारण संभवतः यह है कि विधि रूप में क्रियात्मकता यहीं से आरम्भ होती है। इसका यह अर्थ नहीं कि गोरखनाथ पंतजलि के यम-नियम से अपरिचित है या उसकी मान्यता नहीं देते। सिद्धसिद्धान्त पद्धति में उन्होंने कहा है -

यम इति उपरामः सर्वेन्द्रियजयः नियम इति मनोवृत्तीनां नियमनम्-

सभी इन्द्रियों का अपने विषयों से हट जाना यम है तथा मन की सभी वृत्तियों का नियमन होना यम है। यम-नियम की उनकी यह परिभाषा बहुत सारगर्भित है, उसके आचारत्मक रूप की अपेक्षा यह अधिक योगपरक है। इसका सीधा सम्बन्ध उसके तात्पर्य से है। इसी तरह उन्होंने वहीं पर आसन से लेकर समाधि तक को तात्पर्यार्थ रूप में परिभाषित किया है।

गोरखनाथ ने यह कहकर कि योग वेद-रूप कल्पतरू का फल है, इसका सेवन करें, इससे सभी भवताप (दुःख) दूर हो जाते हैं। योग की गरिमा इंगित की हैं।

द्विजसेवित शाखस्य श्रुतिकल्पतरोः फलम्।
शमनं भवतापस्य योगं भजति सज्जनः।। गो.श.३

गोरखनाथ योग में सिद्धि के निमित्त ज्ञातव्य तथ्यों को जानने के लिये जोर देते हैं। उसके योग में साधना के सारे उपादान शरीर में ही है। शरीर एक घर है जिसमें साधना के सारे उपादान (सामग्रियाँ) मौजूद है। जो उपादानों के साथ इस घर को नहीं जानता वह सिद्धि की आशा कैसे कर सकता है ?

षट्चक्रं षोडशधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चक्रम्।
स्वदेहे ये न जानन्ति कथं सिद्धयन्ति योगिनः।। गो.श.३

एकस्तम्भं नवद्वारं गृहं पञ्चाधि दैवतम्।
स्वदेहे ये न जानन्ति कथं सिद्धयन्ति योगिनः।।

(गोर.शत., गोरख-मन्दिर संस्करण, श्लो. : १३-१४)

योगी अपनी देह में स्थित षट्चक्र, सोलह आधार, त्रिलक्ष्य (तीन लक्ष्य), पंचव्योम (पाँच आकाश) को नहीं जानते हैं वे कैसे योगसिद्ध हो सकते है ? अपनी ही देह में शरीर रूपी घर को जो एक स्तम्भ, नौ द्वार, पाँच तत्त्व और उनके पाँच अधिदैवत से युक्त या निर्मित है, नहीं जानते हैं, वे योगी कैसे योगसिद्ध हो सकते हैं ?

गोरखनाथ की दृष्टि में आभ्यन्तरिक देह-विज्ञान को जानना जरूरी है। यदि इसका ज्ञान तथा उन सभी अंगों की क्रियाओं का ज्ञान नहीं है तो योग की विभिन्न प्रकार की साधनाओं में से किसी एक में भी सफलता प्राप्त करने की आशा दुराशा नहीं है।

इस गोरक्षशतक में योग के छः अंगों पर प्रकाश डालकर उनकी साधना का संकेत तो किया ही गया है, इसके अतिरिक्त कुण्डलिनी, षट्चक्र-साधन पंचभूत-धारणा और ध्यानस्थान का परिणाम सहित प्रतिपादन किया गया है। साथ ही, उपाधि और तत्त्व का भेद भी स्पष्ट किया गया है। इन विषयों को मूल पाठ में देखना चाहिए। यहाँ उन्हें स्पष्ट करने पर बहुत विस्तार हो जायेगा।

इस योग में अजपाजप का बहुत महत्व है जिसका निर्देश गोरखनाथ-मन्दिर वाले संस्करण में किया गया है। उस संस्करण में महामुद्रा, खेचरी मुद्रा, शक्तिचालिनी मुद्रा, महाबन्ध और उड्डियान बन्ध इनका फल सहित सुन्दर वर्णन है। शिव और शक्ति के प्रतीक-रूप बिन्दु और रज की शरीर में यौगिक अवस्थिति का भी योग-पद्धति से विश्लेषण किया गया है। कहा है-

बिन्दु शिवो रज शक्तिश्चन्द्रो विन्दूरजो रविः।
उभयो सङ्गमादेव प्राप्यते परम् पदम्॥
वायुना शक्तिचारेण प्रेरित तु महारजः।
याति विन्दोः सहैकत्वं भवेद् दिव्यवपुस्तदा॥
शुक्र चन्द्रेण संयुक्तं रजः सूर्येण संयुतम्।
तयोः समरसैकत्वं यो जानाति स योगविद्॥

(गोर.शत., गोरखनाथ-मन्दिर सं., श्लो. : ७४-७६)

• बिन्दु (वीर्य) शिव है और रज शक्ति है। बिन्दु चन्द्रमा है और रज सूर्य है। (चन्द्र-स्थान में पाण्डुर वर्ण का बिन्दु (शुक्र) रहता है और सूर्य स्थान (नाभि) में सिन्दूर वर्ण का रज रहता है) इन दोनों के संगम से (योगी को) परम पद की प्राप्ति होती है।

• वायु के द्वारा शक्ति के चालन से जब महा रज ऊपर उठकर बिन्दु के साथ मिलकर एक हो जाता है, तब शरीर दिव्य हो जाता है।

• शुक्र चन्द्रमा से संयुक्त है और रज सूर्य से संयुक्त है। जो इन दोनों का सामरस्य-ऐक्य जानता है, वह योगवित् है।

साधना कुण्डलिनी की हो या चन्द्रमा-सूर्य से सम्बन्धित बिन्दु-रज की, शिव-शक्ति का सामरस्य ही लक्ष्य है। गोरख की योग पद्धति में तन्त्रयोग का अद्भुत सामञ्जस्य है। ऐसा हठयोग में भी है।

गोरक्षशतक में गोरख की योग-पद्धति के सिद्धान्त और प्रक्रिया का दिग्दर्शन हो जाता है। जिससे उसके विस्तार का द्वार खुल जाता है। यह गोरख की परम्परा में मान्य पुस्तक है। इन कारणों से इसे पढ़ा जाना चाहिए। मास्टर जी द्वारा हिन्दी अनुवाद उपलब्ध करा देने से उसमें सुविधा होगी।

गोरख के योग का प्रयोजन है, अपने शरीर के भीतर के साधक (सहायक) उपादानों को जानना, दु:ख से मुक्त होना, आनन्दमय रहना ब्रह्ममय होना और अन्ततः अद्वैत में प्रतिष्ठित होना। उन्होंने इस शतक के समापन में कहा है-

भवभयवनेः वह्निर्मुक्तिसोपानमार्गतः।
अद्वयत्वं वजेन्नित्यं योगवित्परमे पदे।।

(गोरख शतकः १०१)

(यह योग) संसार भय के जंगल के लिये अग्नि है और मुक्ति के लिए सोपान-मार्ग है जिससे योगी अद्वयत्व (अद्वैत) में पहुँचकर परम पद में निवास करता है।

डॉ. मारूतिनन्दन पाठक
पूर्व अध्यक्ष एवं आचार्य
संस्कृत विभाग
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

◆◆◆

ॐ

गोरक्षशतकम्

ॐ श्रीपरमगुरवे गोरक्षनाथाय नमः ।

ॐ गोरक्षशतकं वक्ष्ये भवपाशविमुक्तये ।
आत्मबोधकरं पुंसां विवेकद्वारकुंचिकाम् ।। १ ।।

गोरक्षशतकम् कहता हूँ । यह शतक संसार के बन्धन से मुक्त करानेवाला है । यह आत्मा के बोध को उत्पन्न करानेवाला तथा मनुष्यों के विवेक के द्वार को खोलने के लिए एक कुंजिका (चाबी) है ।। १ ।।

एतद्विमुक्तिसोपानमेतत्कालस्य वंचनम् ।
यद्व्यावृत्तं मनो मोहादासक्तं परमात्मनि ।। २ ।।

यह गोरक्षशतकम् मुक्ति प्राप्ति का सोपान (साधन) है । इससे काल (मृत्यु) का वंचन (उल्लंघन) होता है (मृत्यु पर विजय प्राप्त होती है, शरीर योगाभ्यास द्वारा स्वस्थ्य एवं परिपक्व हो जाता है और उसमें क्षीणता नहीं आती) । (इस शतक में वर्णित अभ्यास के द्वारा) मन मोह से मुक्त होकर परमात्मा में लग जाता है ।। २ ।।

द्विजसेवितशाखस्य श्रुतिकल्पतरोः फलम् ।
शमनं भवतापस्य योगं भजति संज्जनः ।। ३ ।।

वेद कल्पतरु है । वेदरूपी कल्पतरू की शाखाओं का पण्डित जन सेवन (अनुशीलन) करते हैं जिसका फल यह योग है । सत्पुरूष इसका सेवन (साधन) करते है जिससे संसार का ताप (आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक) शमित (शान्त) हो जाता है ।। ३ ।।

आसनं प्राणसंयामः प्रत्याहारोऽथ धारणा ।
ध्यानं समाधिरेतानि योगांगानि भवन्ति षट् ।। ४ ।।

आसन, प्राणायम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि-योग के ये छह: अंग है। (गोरखनाथ के सिद्धसिद्धान्त पद्धति में यम-नियम सहित आठ अंगों की चर्चा की है, किन्तु यहाँ सीधे प्रक्रियागत क्रियात्मक साधना से सम्बन्ध होने के कारण छ: अंग माना है।)।। ४ ।।

आसनानि तु तावन्ति यावत्यो जीवजातय:।
एतेषामखिलान्भेदान्विजानाति महेश्वर: ।। ५ ।।

जितने प्रकार के जीव (प्राणी) हैं उतने ही प्रकार के आसन हैं। उनके सभी भेद शिव जानते है ।। ५ ।।

चतुराशीतिलक्षाणामेकमेकमुदाहृतम्।
तत: शिवेन पीठानां षोडशोनं शतं कृतम् ।। ६ ।।

महेश्वर (शिव) ने चौरासी लाख आसनों में से प्रत्येक का वर्णन किया है। उनमें से चौरासी आसनों को उन्होंने मुख्य बताया है ।। ६ ।।

आसनेभ्य: समस्तेभ्यो द्वयमेव विशिष्टते।
एकं सिद्धासनं प्रोक्तं द्वितीयं कमलासनम् ।। ७ ।।

उन सभी आसनों में केवल दो आसन प्रधान कहे गये है- एक सिद्धासन और दूसरा पद्मासन ।। ७ ।।

योनिस्थानकमंघ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढं विन्यसे न्मेढ्रे
पादमथैकमेव नियतं कृत्वा समं विग्रहम्।
स्थाणु: संयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्यन्भ्रुवोरंतर मे
तन्मोक्षकवाटभेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते ।। ८ ।।

गुदा और मेढ्र (लिंग) के मध्य में योनिस्थान है जिसे कुण्डलिनी-स्थान भी कहा जाता है। साधन के इस योनिस्थान को (बांए) पाव की एडी से दबाकर (दाए) पांव की एड़ी को मेढ्र पर लगाए और शरीर को बिल्कुल सीधा रखे। सभी इंन्द्रियों को वश में रखते हुए भ्रू-मध्य में अचल दृष्टि से देखता रहे तथा स्वयं भी स्थिर एवं अचल रहे। यही मोक्ष के द्वार को खोलनेवाला सिद्धासन कहा गया है ।। ८ ।।

वामोरूपरि दक्षिणं हि चरणं संस्थाप्य वामं तथा
दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढम्।

अंगुष्ठौ हृदये निधाय चिबुकं नासग्रमालोकये-
देतद्व्याधिविकारहारि यमिनां पद्मासनं प्राच्यते ।। ९ ।।

वाम जंघा (जंघा के मूल में) दाहिना पांव (चरण) स्थापित करे तथा उसी प्रकार दाहिनी जंघा पर वायां पांव स्थापित करें और दोनों हाथों को पीछे से ले जाकर दाहिने हाथ से बाएं पांव के अंगूठे और बाएं हाथ से दाहिने पांव के अंगूठे को दृढ़ता से पकड़कर एवं चिबुक को हृदय से लगाकर नासिका के अग्रभाग को (दोनों नेत्रों से) देखें। इसे समस्त व्याधियों और (शारीरिक एवं ानसिक) विकारों को नष्ट करनेवाला पद्मासन कहा गया है ।। ९ ।।

आधारं प्रथमं चक्रं स्वाधिष्ठानं द्वितीयकम् ।
योनिस्थानम् द्वयोर्मध्ये कामरूपम् निगद्यते ।। १० ।।

आधार (मुलाधार) चक्र पहला है, दूसरा चक्र स्वाधिष्ठान है। दोनों के मध्य में स्थित योनिस्थान को कामरूप कहा जाता है ।। १० ।।

आधाराख्ये गुदस्थाने पंकजं यच्चतुर्दलम् ।
तन्मध्ये प्रोच्यते योनिः कामाख्या सिद्धवंदिता ।। ११ ।।

मुलाधार चक्र जो गुदास्थान में है और जो चार (कमल) दलों से युक्त है. उसके मध्य में (त्रिकोणाकार) योनि है। यह (योनि) सिद्धों द्वारा कामाक्षा (कामाक्षा पीठ) कहा गया है ।। ११ ।।

योनिमध्ये महालिंगं पश्चिमाभिमुखं स्थितम् ।
मस्तके मणिवद्भिन्नम् यो जानाति स योगवित् ।। १२ ।।

उस (कामाक्षा) योनि के मध्य में पश्चिमाभिमुख महालिंग स्थित है। उस महालिंग के मस्तक में मणि के सदृश (प्रदीप्त) बिम्ब को जो जानता है वही योगवेत्ता है ।। १२ ।।

तप्तचामीकराभासं तडिल्लेखेव विस्फुरत् ।
चतुरस्रं पुरं वन्हेरधोमेढ्रात्प्रतिष्ठितम् ।। १३ ।।

मेढ्र से नीचे (मूलाधार पद्म की कर्णिका में) तपे हुये सोने के वर्ण की आभा और विद्युल्लेखा के सदृश ज्योर्तिमय चतुरस्त्राकार अग्निमय (वह योनिस्थान) है। (पाठान्तर त्रिकोणाकार भी है) ।। १३ ।।

स्वशब्देन भवेत्प्राणः स्वाधिष्ठानं तदाश्रयः।
स्वाधिष्ठानाख्यया तस्मान्मेढ्रवाभिधीयते।। १४।।

'स्व' शब्द प्राण का उद्गम है। (स्व शब्द से प्राण का बोध होता है।) स्वाधिष्ठान ही प्राण का आश्रम या स्थान है। अतः स्वाधिष्ठान पद ही मेढ्र कहा जाता है।। १४।।

तंतुना मणिवत्प्रोतो यत्र कंदः सुषुम्णया।
तन्नाभिमंडलं चक्रं प्रोच्यते मणिपूरकम्।। १५।।

सूत्र में पिरोए मणि के समान सुषुम्ना नाड़ी का केन्द्र है। यह नाभिमण्डल में स्थित (कन्द) मणिपूरक चक्र कहा जाता है।। १५।।

ऊर्ध्व मेढ्रादधो नाभेः कन्दयोनिः खगांडवत्।
तत्र नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणि द्विसप्ततिः।। १६।।

मेढ्र से ऊपर और नाभि से नीचे पक्षी के अण्डे के सदृश्य कन्द-योनि है। यहां से (इस कन्दयोनि से) बहत्तर हजार नाड़ियां उत्पन्न होती है।। १६।।

तेषु नाडिसहस्रेषु द्विसप्ततिरुदाहृताः।
प्राधान्यात्प्राणवाहिन्यो भूयस्तत्र दश स्मृताः।। १७।।

इन सहस्रों नाड़ियसों में बहत्तर हजार नाड़ियां मुख्य है और उन (बहत्तर हजार नाड़ियों) में भी दस प्राणवाहिनी नाड़ियां ही प्रधान है।। १७।।

इडा च पिंगला चैव सुषुम्णा च तृतीयका।
गांधारी हस्तिजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी।। १८।।
अलंबुषा कुहूश्चैव शंखिनी दशमी स्मृता।
एतन्नाडिमयं चक्रं ज्ञातव्यं योगिभिः सदा।। १९।।

(पहली) इडा, (दूसरी) पिंगला और तीसरी सुषुम्ना नाड़ी है। (इनके अतिरिक्त) गांधारी, हस्तिजिह्वा, षूषां, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू और शंखिनी ये दस नाड़ियां (प्रधान) है। योगियों को इन नाड़ियों से युक्त चक्र को सदा जानना चाहिये।। १८-१९।।

इडा वामे स्थिता भागे पिंगला दक्षिणे तथा।
सुषुम्णा मध्यदेशे तु गान्धारी वामचक्षुषि।। २०।।

दक्षिणे हस्तिजिह्वा च पूषा कर्णे च दक्षिणे।
यशस्विनी वामकर्णे चानने वाप्यलंबुषा।। २१।।

कूहूश्च लिंगदेशे तु मूलस्थाने च शंखिनी।
एवं द्वारमुपाश्रित्य तिष्ठन्ति दश नाडिकाः।। २२।।

सततं प्राणवाहिन्यः सोमसूर्याग्निदेवताः।
इडापिंगलासुषुम्णा च तिस्रो नाड्य उदाहृताः।। २३।।

(नासिका के) वाम भाग में इडा औरं दक्षिण भाग में पिंगला नाड़ी है (इन दोनों के) मध्य में सुषम्ना है। गांधारी वाम नेत्र में और दक्षिण (दाहिने) नेत्र में हस्तिजिह्वा है। पूषा दाहिने कान में और यशस्विनी बाएं कान में है। मुख में अलम्बुषा है और लिंगदेश में कुहू हैं। शंखिनी मूलस्थान (मूलाधार) में है। इस प्रकार ये दस नाड़ियां (प्राणवायु के) द्वार में स्थित है। इडा, पिंगला और सुषम्ना प्राण के मार्ग में स्थित है और निरन्तर (शरीर में) प्राण का संचार करती रहती है। इनके देवता (इडा के) चन्द्रमा, (पिंगला के) सूर्य और (सुषम्ना के) अग्नि है।। २०-२३।।

प्राणापानौ समानश्च ह्युदानो व्यान एव च।
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनंजयः।। २४।।
नागाद्याः पंच विख्याताः प्राणाद्याः पंच वायवः।
एते नाडिसहस्रेषु वर्तन्ते जीवरूपिणः।। २५।।

प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान (ये पांच) तथा नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनंजय (ये पांच) ऐसे कुल दस वायु है जो हजारों नाड़ियों में जीव रूप में रहते है।। २४-२५।।

प्राणापानवशो जीवो ह्यधश्चोर्ध्वं च धावती।
वामदक्षिणमार्गेण चंचलत्वान्न दृश्यते।। २६।।

जीव, प्राण और अपान के वश में होकर वाम और दक्षिण मार्ग से (इडा और पिंगला के द्वारा) नीचे से ऊपर एवं ऊपर से नीचे की ओर दौड़ता (चढ़ता-उतरता) रहता है जो चंचलता के कारण दिखाई नहीं पड़ता है।। २६ ।।

आक्षिप्तो भुवि दण्डेन यथोच्चलति कंदुकः।
प्राणापानसमाक्षिप्तस्तथा जीवोऽनुकृष्यते।। २७।।
रज्जुबद्धो यथा श्येनो गतोऽप्याकृष्यते पुनः।
गुणबद्धस्तथा जीवः प्राणापानेन कृष्यते।। २८।।
अपानः कर्षति प्राणं प्राणोऽपान च कर्षति।
ऊर्ध्वाधः संस्थितावेतौ यो जानाति स योगवित्।। २९।।

जिस प्रकार दण्ड के द्वारा आक्षिप्त (उछालने या ताड़ित) होने से गेंद पृथ्वी पर उछलती रहती है उसी प्रकार प्राण और अपान के द्वारा आक्षिप्त (आकृष्ट) होकर जीव (जीवात्मा) (क्षण भर भी) स्थिर नहीं रह पाता। जिस प्रकार डोरी से बंधा बाज पक्षी (डोरी ढील देने पर) ऊपर उड़ने लगता है। डोरी खिंचने पर नीचे आ जाता है उसी प्रकार (सत्व, रज, तम) गुणों (वासना और अविद्या) में बंधा हुआ जीव प्राण और अपान के द्वारा ऊपर नीचे खिंचता रहता है। अपान प्राण को खिंचता है और प्राण अपान को खिंचता है इस तरह ऊपर-नीचे खिंचते प्राण-अपान को जो संयोजित करना जानता है वहीं योगवेत्ता है।। २७-२९।।

कंदोर्ध्वे कुंडलीशक्तिरष्टधा कुंडलीकृता।
ब्रह्मद्वारमुखं नित्यं मुखेनावृत्य तिष्ठति।। ३०।।

कन्द (मेढ्र के ऊपर और नाभि के नीचे जो कन्द है, वह सभी नाड़ियों का उत्पत्ति-स्थान है।) के ऊपर कुण्डलिनी शक्ति आठ प्रकार की होकर कुण्डलित रूप में ब्रह्मरन्ध्र को अपने मुख से आच्छादित करके (रोककर) स्थित है।। ३०।।

प्रबुद्धा वह्नियोगेन मनसा मारुता हतां।
प्रजीवगुणमादाय व्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्णया।। ३१।।

वह (कुण्डलिनी) वह्नियोग से जागृत होकर मन और प्राण (वायु) के द्वारा आहत होकर अथवा उनके साथ डोर में बंधी सुई के समान सुषुम्ना-पथ में ऊपर उठती है।। ३१।।

महामुद्रां नभोमुद्रामुड्डियानं जलंधरम्।
मूलबंधं च यो वेत्तिः स योगी सिद्धिभाजनम्।। ३२।।

जो योगी महामुद्रा, नभोमुद्रा (खेचरी मुद्रा), उड्डीयान बंध, जालन्धर बन्ध और मूलबंध जानता (अभ्यारा में निष्णात) है वही योगी सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त करने का अधिकारी होता है।। ३२।।

वक्षोन्यस्तहनुर्निपीड्य सुचिरं योनिं च वामांघ्रिणा
हस्ताभ्यामवधारितं प्रसरितं पादं तथा दक्षिणम्।
आपूर्य श्वसनेन कुक्षियुगलं बँद्ध्वा शनैः रेच येदेषा।
पातकनाशिनी सुमहती मुद्रा नृणां प्रोच्यते।। ३३।।

वक्ष (हृदय) में ठोढी को लगाकर साधक बाएं पांव (की एड़ी) से योनिस्थान को देर तक दबाकर रखे तथा दोनों हाथों से फैले हुए दाहिने पांव को पकड़े और दोनों कुक्षियों को पूरक द्वारा वायु से भरे, फिर (कुम्भक द्वारा रोककर और रेचक द्वारा) धीरे-धीरे बाहर निकाल दें। यह मनुष्यों की सभी पातकनाशिनी (व्याधिविनाशिनी) महामुद्रा कही जाती है।। ३३।।

कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा।
भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी।। ३४।।

जिह्वा (जीभ का अग्रभाग) को उलटा लौटाकर कपाल-कुहर में प्रविष्ट कराया जाता है और दृष्टि दोनों भौहों के बीच में स्थिर की जाती है। यही खेचरी मुद्रा है।। ३४।।

ऊर्ध्व मेढ्रादधो नाभेरूड्डियांन प्रचक्षते।
उड्डियानजयो बंधो मृत्युमातंगकेसरी।। ३५।।

मेढ्र से ऊपर और नाभि से नीचे भाग को उड्डियान बन्ध कहा जाता है। (उड्डियान बन्ध में इस भाग को पीछे (अन्दर) की ओर खिंचना होता है।) उड्डियान बन्ध सिद्ध होने पर यह मृत्युरूपी हाथी के लिये सिंह के समान है।। ३५।।

जालंधरे कृते बंधे कंठसंकोचलक्षणे।
न पीयूषं पतत्यग्नौ न च वायुः प्रकुप्यति।। ३६।।

जालन्धर बन्ध में कण्ठ का संकोचन करता होता है। (संकुचित कण्ठ में ठुड्डी को लगा दिया जाता है) जालन्धर बन्ध से (बिन्दु-स्थित चन्द्रमा से निस्पन्दित होने वाला) अमृत (मणिपुर में स्थित) अग्नि में नहीं गिरता (गिरकर भस्म नहीं होता) और वायु भी प्रकुपित नहीं होती।। ३६।।

पार्ष्णिभागेन संपीड्य योनिमाकुंचयेद्गुदम्।
अपानमूर्ध्वमाकृष्य मूलबंधो निगद्यते।। ३७।।

पांव की एड़ी से योनिस्थान को ठीक से दबाकर गुदा को सिकोड़ना चाहिये और अपान वायु को ऊपर की ओर खिंचना चाहिये (तथा प्राणवायु से मिलाना चाहिये। यही मूलबन्ध है) इसे मूलबन्ध कहा जाता है।। ३७।।

यतः कालभयात् ब्रह्मा प्राणायामपरायणः।
योगिनो सुनयश्चैव ततः प्राणं निबंधयेत् ।। ३८।।

काल (मृत्यु) के भय से ब्रह्मयोगी और मुनिगण प्राणायाम का अभ्यास करते रहते है। इसलिये (सभी को) प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये।। ३८।।

चले वाते चलं सर्वं निश्चले निश्चलं भवेत्।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निबंधयेत्।। ३९।।

जब तक (शरीर में) वायु (प्राण) चंचल है तब तक सब कुछ चंचल रहता है, उसके निश्चल (स्थिर) होने पर अन्य सभी स्थिर हो जाते है। इससे योगी स्थाणुत्व (निश्चलता, स्थिरता) प्राप्त करता है, इसलिये प्राणायाम करना चाहिये।। ३९।।

षट्त्रिंशदंगुलं हंसः प्रयाणं कुरुते बहिः।
वामदक्षिणमार्गेण ततः प्राणोऽभिधीयते।। ४०।।

(प्राण-रूप वायु) हंस वाम और दक्षिण नासा-रन्ध्रों से छत्तीस अंगुल (की दूरी तक) बाहर निकलता है, इसलिये (वायु को) प्राण कहा जाता है।। ४०।।

बद्धपद्मासनो योगी नमस्कृत्य गुरुं शिवम्।
नासाग्रदृष्टिरेकाकी प्राणायामं समभ्यसेत्।। ४१।।

बद्धपद्मासन में बैठकर शिव-रूप गुरु को नमस्कार कर नासिका के

अग्रभाग पर दृष्टि रखते हुये एकाकी (एकान्त में अकेला) योगी को प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये ।। ४१ ।।

प्राणो देहस्थितो वायुरायांमस्तन्निबन्धनम् ।
एकश्वासमयी मात्रा तद्योगो गगनायते ।। ४२ ।।

शरीर में स्थित प्राणवायु तथा अपान वायु का निरोध पूर्वक मिलना और एक श्वास हो जाना- यह योग ऊर्ध्वगामी एवं उत्कृष्ट है। (प्राण और अपान का मिलना एक श्रेष्ठ योग है ।। ४२ ।।

बद्धपद्मासनो योगी प्राणं चंद्रेण पूरयेत् ।
धारयित्वा यथाशक्ति भूयः सूर्येण रेचयेत् ।। ४३ ।।

योगी को बद्धपद्मासन में बैठकर चन्द्रनाड़ी (वाम नासिकारन्ध्र) से प्राणवायु को भीतर खिंचकर कुम्भक करना चाहिये और उसके बाद सूर्य नाड़ी (दक्षिण नासिकारन्ध्र) से उसे बाहर निकालना (रेचक करना) चाहिये ।। ४३ ।।

अमृतोदधिसंकाशं क्षीरोदधवलप्रभम् ।
ध्यात्वा चंद्रमयं बिम्बं प्राणायामे सुखी भवेत् ।। ४४ ।।

अमृत के समुद्र की आभा सदृश और दुग्ध-समुद्र की धवल प्रभा-सदृश चन्द्र-बिम्ब का ध्यान कर प्राणायाम करने से साधक सुखी होता है ।। ४४ ।।

प्राणं सूर्येण चाकृष्य पूरयेदुदरं शनैः ।
कुंभयित्वा विधानेन भूयश्चन्द्रेण रेचयेत् ।। ४५ ।।

सूर्यनाड़ी (दक्षिण नासिका-छिद्र) से प्राणवायु धीरे-धीरे खींचकर उदर को भरना चाहिये, फिर विधिपूर्वक कुम्भक करना चाहिये। पुनः चन्द्रनाड़ी (वाम नासिका-छिद्र) से (धीरे-धीरे रेचक करना चाहिये) ।। ४५ ।।

प्रज्ज्वलज्ज्वलन ज्वाला पुञ्जमादित्यमण्डलम् ।
ध्यात्वा नाभिस्थितं योगी प्राणायामे सुखी भवेत् ।। ४६ ।।

नाभि में स्थित अत्यन्त प्रज्ज्वलित अग्नि की ज्वाला के पुञ्ज से युक्त सूर्यमण्डल का ध्यान कर प्राणायाम करने से योगी सुखी होता है ।। ४६ ।।

रेचकः पूरकश्चैव कुम्भकः प्रणवात्मकः ।
प्राणायामो भवेत्त्रेधा मात्राद्वादशसंयुतः ।। ४७ ।।

प्रणव के साथ रेचक, पूरक और कुम्भक तीन प्रकार से प्राणायाम होता है। इसमें बारह मात्रा का अनुपात होना चाहिये ।। ४७ ।।

द्वादशाधमके मात्रा मध्यमे द्विगुणास्ततः।
उत्तमे त्रिगुणा मात्राः प्राणायामस्य निर्णयः ।। ४८ ।।

बारह मात्रा के अनुपातवाला प्राणायाम अधम (निम्न) होता है, इसके द्विगुण (चौबीस मात्रा के अनुपातवाला) मध्यम और उसके त्रिगुण (छत्तीस मात्रा के अनुपातवाला) उत्तम होता है ।। ४८ ।।

अधमे च घनो घर्मः कम्पो भवति मध्यमे।
उत्तमे त्रिगुणा मात्राः प्राणायामस्य निर्णयः ।। ४९ ।।

अधम प्राणायाम में अतिशय स्वेद (पसीना) होता है, मध्यम में शरीर में कम्पन होता है और उत्तम में बद्धपद्मासन में ही (कुछ ऊपर) उठ जाता है ।।४९ ।।

अंगानां मर्दनं शस्तं श्रमसंजातवारिणा।
कट्वम्ललवणत्यागी क्षीरभोजनमाचरेत् ।। ५० ।।

प्राणायाम के श्रम से उत्पन्न स्वेद (पसीने) को (शरीर के) अंगों में मलना प्रशस्त (लाभदायक) है। (प्राणायाम-साधना काल में) कटु, अम्ल तथा लवण पदार्थ का त्याग करना चाहिये और दुग्ध पदार्थ का भोजन करना चाहिये ।।५० ।।

मन्दम् मन्दम् पिबेद्वायु मन्दम् मन्दम् वियोजयेत्।
नाधिकं स्तम्भयेद्वायुं न च शीघ्रं विमोचयेत् ।। ५१ ।।

धीरे-धीरे वायु-पान करना चाहिये और धीरे-धीरे ही उसे ग्रहण करना चाहिये। अधिक (ज्यादा देर तक) स्तम्भन (कुम्भक) नहीं करना चाहिये तथा शीघ्रता से रेचन भी नहीं करना चाहिये ।। ५१ ।।

ऊर्ध्वमाकृष्य चापानं वात प्राणे नियोजयेत्।
मूर्धानं नीयते शक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। ५२ ।।

अपान वायु को ऊपर खींचकर प्राण में नियोजित करना चाहिये। (इसकी) शक्ति से (चेतना की) ऊर्ध्वगामिता होती है और सभी पापों से मुक्ति मिलती है ।। ५२ ।।

प्राणायामो भवत्येवं पातकेन्धनपावकः।
एनोम्बुधिमहासेतुः प्रोच्यते योगिभिः सदा।। ५३ ।।

इस प्रकार प्राणायाम पातकरूपी इंधन के लिये अग्नि है यह पापों को जला डालता है। यह पापों के समुद्र के लिये महासेतु है। योगीजन सदा ऐसा कहते है।। ५३ ।।

आसनेन रुजो हन्ति प्राणायामेन पातकम्।
विकारं मानसं योगी प्रत्याहारेण सर्वदा।। ५४ ।।

योगी आसन से रोग नष्ट करता है, प्राणायाम से पातक नष्ट करता है और प्रत्याहार से मानसिक विकार नष्ट करता है।। ५४ ।।

चन्द्रामृतमयी धारां प्रत्याहरति भास्करः।
तत्प्रत्याहरणं तस्य प्रत्याहारः स उच्यते।। ५५ ।।

चन्द्रमा की अमृतधारा को सूर्य रोक देता है अर्थात् सुखा देता है या नष्ट कर देता है। जो इस अवरोध को रोक दे उसे प्रत्याहार कहा जाता है।। ५५ ।।

एका स्त्री भुज्यते द्वाभ्यामागता सोममंडलात्।
तृतीयो यो भवेत्ताभ्यां स भवत्यजरामरः।। ५६ ।।

सोममण्डल से आयी हुई एक स्त्री (चन्द्रामृतमयी धारा) दो के द्वारा युक्त होती है। उन दोनों से भिन्न तीसरे के होने से वह (योगी) अजर-अमर हो जाता है। (यह इस योग की एक प्रक्रिया है जो सुधा और नाड़ियों से सम्बन्धित है जिसे साधकों को उस सम्प्रदाय के योगियों से जानना चाहिये)।। ५६ ।।

नाभिदेशे भवत्येको भास्करो दहनात्मकः।
अमृतात्मा स्थितो नित्यं तालुमूले च चन्द्रमाः।। ५७ ।।

नाभि-स्थान में दहन (जलाकर भस्मसात) करनेवाला सूर्य स्थित है और तालुमूल (तालु मध्य) में अमृतात्मा (अमृत निस्पन्दित करते हुये) चन्द्रमा स्थित है।। ५७ ।।

वर्षत्यधोमुखश्चन्द्रो ग्रसत्यूर्ध्वमुखो रविः।
ज्ञातव्यं करणं तत्र येन पीयूषमाप्यते।। ५८ ।।

(तालुमूल में) अधोमुख चन्द्रमा अमृत बरसाता है और (नाभि देश में) ऊर्ध्वमुख सूर्य उसे ग्रस (सोख) लेता है। योगी को वह (विधि) जाननी चाहिये जिससे अमृत प्राप्त हो ।। ५८ ।।

ऊर्ध्वनाभिरधस्तालु ऊर्ध्वभानुरधः शशी।
करणं विपरीताख्यं गुरुवक्त्रेण लभ्यते ।। ५९ ।।

नाभि ऊर्ध्व (ऊपर) और तालु अधः (नीचे) तथा सूर्य ऊपर और चन्द्रमा नीचे हो जाये, यह विपरीत करने की क्रिया (किसी योगी) गुरु के मुख से जाननी चाहिये ।। ५९ ।।

त्रिधा बद्धो वृषो यत्र रौरवीति महारवनम्।
अनाहतं च तच्चक्रं हृदये योगिनो विदुः ।। ६० ।।

वृषभ (सांड़े) तीन तरफ से बंधा हुआ है और घोर गर्जना कर रहा है। हृदय में यह अनाहत चक्र है जिसे योगी लोग जानते है ।। ६० ।।

अनाहतमतिक्रम्य चाक्रम्य मणिपूरकम्।
प्राप्ते प्राणे महापद्मं योगित्वममृतायते ।। ६१ ।।

मणिपुर और अनाहत के अतिक्रमण होने पर प्राण की अवस्थिति महापद्म में होती है। (अनाहत में पहुचने पर ही) योगित्व (योगी कहलाने लायक) की संज्ञा होती है जो अमृतमय है ।। ६१ ।।

विशब्दः संस्मृतो हंसो निर्मलः शुद्ध उच्यते।
अतः कण्ठे विशुद्धाख्यं चक्रं चक्रविदो विदुः ।। ६२ ।।

विशद्ध (निरश्वब्दता) हंस का द्योतक और निर्मलता को शुद्धि कहा जाता है। इसलिये कण्ठ में विशुद्धि चक्र है। (इसे शुद्धि का चक्र भी कहा जाता है जहां सब कुछ शुद्ध और संतुलित हो जाता है) इसे (इस तथ्य को) चक्रों के ज्ञाता जानते है ।। ६२ ।।

विशुद्धे परमे चक्रे धृत्वा सोमकलाजलम्।
मासेन न क्षयं याति वंचयित्वा मुखं रवेः ।। ६३ ।।

(विशुद्धि चक्र के जागृत होने पर) परम विशुद्धि चक्र में चन्द्रमा की कलाओं का जल (अमृत) धारण करने पर महीने भर उसका क्षय नहीं होता

और वह (अमृत) सूर्य के मुख में जाने से बच जाता है।। ६३।।

संपीड्य रसनाग्रेण राजदंतबिलं महत्।
ध्यात्वाऽमृतमयी देवीं षण्मासेन कविर्भवेत्।। ६४।।

जिह्वा के अग्रंभाग से राजदन्त के छिद्र को दबाकर और उस अमृतमंयी देवी का ध्यान कर (जो योगी उस अमृत को धारण करता है वह) छः महीने में कवि हो जाता है।। ६४।।

अमृतापूर्णदेहस्य योगिनो द्वित्रिवत्सरात्।
ऊर्ध्वं प्रवर्तते रेतोप्यणिमादिगुणोदयः।। ६५।।

योगी दो-तीन वर्षों तक देह को अमृतपूर्ण बनाये रखे तो उसका रेतस् ऊर्ध्वगामी हो जाता है और उस देह में अणिमादि सिद्धियों का उदय होने लगता है।। ६५।।

इन्धनानि यथा वह्निस्तैलैंवेर्तिं च दीपकः।
तथा सोमकलापूर्ण देही देहं न मुंचति।। ६६।।

जिस प्रकार इंधन होने पर अग्नि जलती रहती है, तेल से पूर्णवर्तिका होने पर दीपक जलता रहता है। उसी प्रकार सोमकला (अमृत) पूर्ण देह को देही (आत्मा) त्याग नहीं करती। (उस अमृतपूर्ण देह में वह बनी रहती है)।। ६६।।

आसनेन समायुक्तः प्राणायामेन संयुतः।
प्रत्याहारेण संयुक्तो धारणाश्च समभ्यसेत्।। ६७।।

आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार से संयुक्त (इन तीनों के पूर्ण अभ्यास सिद्ध) होने पर धारणा का अभ्यास करना चाहिये।। ६७।।

हृदये पंचभूतानां धारणाश्चं पृथक् पृथक्।
मनसो निश्चलत्वेन धारणा च विधीयते।। ६८।।

हृदय में पंचभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) की धारणा पृथक-पृथक् करनी चाहिये। मन की निश्चलता से धारणा होती है। (एकाग्रता को ही धारणा कहा जाता है।)।। ६८।।

या पृथ्वी हरितालदेशरुचिरा पीता लकरान्विता
संयुक्ता कमलासनेन हि चतुष्कोणा हृदि स्थायिनी।
प्राणं तत्र विनीय पंचघटिकाश्चित्तान्वितं धारये-
देषा स्तम्भकरी सदा क्षितिजयं कुर्याद्भुवो धारणा।। ६९।।

जिसे पृथ्वी (तत्त्व या महाभूत) कहते है वह (मूलाधार) में कमलासन (चार दलों वाले कमल) पर हरिताल की तरह पीली आभा से युक्त पीले रंग के चतुष्कोण के मध्य पीताभलंकार (लं बीज से युक्त) है वहां पाचं घटिका तक प्राण और चित्त को स्थिर करके उसकी धारणा करनी चाहिये। यह स्तम्भकारी है और इसके द्वारा पृथ्वी (तत्त्व या भूत) पर जय प्राप्त करनी चाहिये। यही पृथ्वी धारणा है।। ६९।।

अर्धेन्दुप्रतिमं च कुंदधवलं कंठेबुतत्त्वं स्थितं
यत्पीयूषवकार बीज सहितं युक्तं सदा विष्णुना।
प्राणं तत्र विनीय पंचघटिकाश्चित्तान्वितं धारये-
देषा दुर्वहकालकूटजरणा स्याद्वारिणी धारणा।। ७०।।

(स्वाधिष्ठान चक्र में) जहां अर्ध चन्द्रमा है उसके कण्ठ (ऊपरी भाग में) कुन्द-पुष्प के समान धवल जल तत्त्व स्थित है और वहां विष्णु के साथ अमृत-स्वरूप वकार बीज है। वहां पर पांच घटिका तक प्राण और चित्त को स्थित कर धारणा करनी चाहिये। यह दुर्वह (महाकठिन) कालकूट (हलाहल विष) को भी क्षीण करनेवाला है। यह वारिणी (जल महाभूत की) धारणा है।। ७०।।

यत्तालस्थितमिंद्रगोपसदृशं तत्त्वं त्रिकोणोज्ज्वलं
तेजोरेफमयं प्रवालरुचिरं रुद्रेण यत्संगतम्।
प्राणं तत्र विनीय पञ्चघटिकाश्चित्तान्वितं धारये-
देषा वह्निजयं सदा विदधते वैश्वानरी धारणा।। ७१।।

(मणिपुर चक्र में) जल से भरे बादलों के रंग वाले कमलों के मध्य रक्तिम त्रिकोण में रक्त वर्ण का रकार (रं बीज) है जिस पर रक्त वर्णी रूद्र हैं वहां पर पांच घटिका तक प्राण और चित्त स्थिर कर धारणा करने से अग्नि-जय होती है। यह वैश्वानरी (अग्नि-भूत की) धारणा है ।। ७१।।

यद्भिन्नांजनपुंजसान्निभमिदं तत्त्वं भ्रुवोरन्तरे
वृत्तं वायुमयं यकारसहितं यत्रेश्वरो देवता।
प्राणं तत्र विनीय पञ्चघटिकाश्चित्तान्वितं धारये-
देषा खे गमनं करोति यमिनां स्याद्वायवी धारणा।। ७२।।

(अनाहत चक्र में) जहां भिन्नाञ्जनपुंजसान्निभ (धूम वर्ण का) वायु तत्त्व का यकार (यं बीज) है। और उसके देवता ईश्वर है, वहां पांच घटिका, तक प्राण और चित्त को स्थिर कर धारणा करनी चाहिये जिससे योगी आकाश गमन में समर्थ होता है। यह वायवी (वायु भूत की) धारणा है।। ७२।।

आकाशं सुविशुद्धवारिसदृशं यद्ब्रह्मरन्ध्रे स्थितं,
तत्राद्येन सदाशिवेन सहितं शांतं हकाराक्षरम्।
प्राणं तत्र विनीय पञ्चघटिकाश्चित्तान्वयं धारये-
देषा मोक्षकवाटपाटनपटुः प्रोक्ता नभोधारणा।। ७३।।

(विशुध्दि चक्र में) जहां विशुद्ध जल के सदृश (उज्ज्वल) आकाश-तत्त्व स्वरूप, हकार (हं बीज) शान्त सदाशिव के साथ स्थित है, वहां पांच घटिका तक प्राण और चित्त को स्थिर कर धारणा करनी चाहिये। यह धारणा मोक्ष के कपाट को खोलने वाली है। इसे नभोधारणा (आकाश-भूत की धारणा) कहते है।। ७३।।

स्तम्भनी द्रावणी चैव दहनी भ्रामणी तथा।
शोषणी च भवन्त्येव भूतानां पंचधारणाः।। ७४।।

स्तम्भनी, द्राविणी, दहनी, भ्रामणी और शोषणी ये (पंच) भूतों की पांच धारणाएं है।। ७४।।

कर्मणा मनसा वाचा धारणाः पंच दुर्लभाः।
विधाय सततं योगी सर्वपापैः प्रमुच्यते।। ७५।।

कर्म, मन और वाणी से (अभ्यास करने योग्य) ये पांच धारणाएं दुर्लभ है। इनका सतत् अभ्यास करने से योगी सभी पापों से मुक्त हो जाता है।।७५।।

सर्व चिंतासमावर्ति योगिनो हृदि वर्तते।
यत्तत्वे निश्चितं चेतस्ततु ध्यानं प्रचक्षते।। ७६।।

योगियों के हृदय में सभी चिन्तनो में जो एक धातु निर्मल चिन्तन है। उसमें निश्चित (एकतान रूप में) चित्त लग जाये उसे ध्यान कहते है ।। ७६ ।।

द्विधा भवति तद्ध्यानं सगुणं निर्गुणं तथा।
सगुणं वर्णभेदेन निर्गुणं केवलं विदुः ।। ७७ ।।

वह ध्यान दो प्रकार का है। एक सगुण और दुसरा निर्गुण। सगुण में वर्णभेद (रूपात्मक भेद) होता है, किन्तु निर्गुण में केवल (रूपाभाव-आकार-राहित्य) होता है ।। ७७ ।।

आधारं प्रथमं चक्रं तप्तकांचनसन्निभम्।
नासाग्रे दृष्टिमादाय ध्यात्वा मुंचति किल्बिषम् ।। ७८ ।।

तप्त स्वर्ण के समान (पीले रंग का) आधार (मूलाधार) प्रथम चक्र है। नासाग्र दृष्टि रखकर उसका ध्यान करने से किल्विष (दोष, रोग) नष्ट हो जाता है ।। ७८ ।।

स्वाधिष्ठानं द्वितीयं तु सन्माणिक्यसुशोभनम्।
नासाग्रे दृष्टिमादाय ध्यात्वा मुंचति पातकम् ।। ७९ ।।

माणिक्य-वर्ण (सिन्दूरी रंग का) स्वाधिष्ठान द्वितीय चक्र है। नासाग्र-दृष्टि रखकर उसका ध्यान करने से पातक नष्ट हो जाता है ।। ७९ ।।

तरुणादित्यसंकाशं चक्रं च मणिपूरकम्।
नासाग्रे दृष्टिमादाय ध्यात्वा संक्षोभजेज्जगत् ।। ८० ।।

तरुण सूर्य के सदृश वर्ग (रक्त वर्ण का) मणिपूरक (तृतीय) चक्र है। नासाग्र दृष्टि रखकर उसका ध्यान करने से (योगी जगत् को संक्षोभित करने में समर्थ होता है।) ।। ८० ।।

(श्लोक संख्या ८१ लुप्त है)

विद्युत्प्रभावं हृत्पद्मे प्राणायामविभेदनैः।
नासाग्रे दृष्टिमादाय ध्यात्वा ब्रह्ममयो भवेत् ।। ८२ ।।

प्राणायाम के द्वारा भेदन कर विद्युत की आभा (रक्तोज्ज्वल अनाहतं) हृदयपदम् में नासाग्र दृष्टि रखकर ध्यान करने से (योगी) ब्रह्ममय हो जाता है ।। ८२ ।।

संततं घटिकामध्ये विशुद्धं चामृतोद्भेवम्।
नासाग्रे दृष्टिमादाय ध्यात्वा ब्रह्ममयो भवेत्।। ८३।।

घण्टिका के मध्य (उपजिह्वा के मध्य दीपक प्रभा वाले) विशुद्धि चक्र जहां निरन्तर अमृत का उद्भव होता रहता है, नासाग्र दृष्टि रखकर उस पर ध्यान करने से (योगी) ब्रह्ममय होता है।। ८३।।

भ्रुवोर्मध्ये स्थितं देवं स्निग्धमौक्तिकसन्निभम्।
नासाग्रे दृष्टिमादाय ध्यात्वाऽऽनंदमयो भवेत्।। ८४।।

दोनों भौंहों के मध्य (आज्ञा चक्र में) में माणिक्य-प्रज्ञा के सदृश (इतराख्य लिंग के साथ) देदीप्यमान देव (परमेश्वर) स्थित है। नासाग्र दृष्टि रखकर वहां ध्यान करने से (योगी) आनन्दमय हो जाता है।। ८४।।

निर्गुणं च शिवं शांतं गगने विश्वतोमुखम्।
नासाग्रे दृष्टिमादाय ध्यात्वा दुःखाद्विमुच्यते।। ८५।।

गगन-रूप (सहस्त्रार) में विश्वोन्मुख निर्गुण परम शान्त शिव है। नासाग्र-दृष्टि रखकर वहां ध्यान करने से सभी दुःखों से मुक्ति मिल जाती है।। ८५।।

गुदं मेढ्रं च नाभि च हृत्पद्मं च तदूर्ध्वतः।
घंटिकां लंपिकास्थानं भ्रुमध्ये परेश्वरम्।। ८६।।
निर्मलं गगनाकारं मरीचिजलसन्निभम्।
आत्मानं सर्वगं ध्यात्वा योगी योगमवाप्नुयात्।। ८७।।

गुदा, मेढ्र, नाभि, हृदयपद्म तथा उसके ऊपर घण्टिका और लम्पिका स्थान (तालु स्थान) में भ्रूमध्य में परमेश्वर तथा अतिशय प्रकाश से भास्वर गगनस्वरूप निर्मल-सर्वव्यापी आत्मा (परम आत्मा) का ध्यान करने से योगी को योग (समाधि) की प्राप्ति होती है।। ८६-८७।।

कथितानि यथैतानि ध्यानस्थानानि योगिनाम्।
उपाधितत्त्वयुक्तानि कुर्वन्त्यष्टगुणोदयम्।। ८८।।

योगियों के लिये ये ध्यान-स्थान कहे गये है ये आठ गुणों के उदय को उपाधि और तत्त्व से युक्त कर देते है।। ८८।।

उपाधिश्च तथा तत्त्वं द्वयमेवमुदाहृतम्।
उपाधिः प्रोच्यते वर्णस्तत्त्वमात्माभिधीयते ।। ८९ ।।

उपाधि और तत्त्व ये दोनों पृथक हैं। वर्ण (आकार) को उपाधि कहा जाता है तथा तत्त्व को आत्मा कहते हैं।। ८९ ।।

उपाधिरन्यथाज्ञानं तत्त्वं संस्थिमयन्यथा।
समस्तोपाधिविध्वंसि सदाभ्यासेन योगिनाम् ।। ९० ।।

उपाधि अन्यथाज्ञान (मिथ्याज्ञान) है, किन्तु तत्व वास्तविक ज्ञान है। योगी निरन्तर अभ्यास से सभी उपाधियों का विध्वंस (नष्ट) करते है।। ९० ।।

आत्मवर्णेन भेदेन दृश्यते स्फाटिको मणिः।
मुक्तो यः शक्तिभेदेन सोऽयमात्मा प्रशस्यते ।। ९१ ।।

स्फटिक मणि पर आत्मवर्ण (जिस वर्ण का प्रतिबिम्ब पड़ता है) उसी वर्ण (उसी रंग) का यह दिखता है। (आत्मा के साथ भी ऐसा ही होता है।) वर्ण (रंग संस्कार आदि उपाधियों) के शक्ति-भेद से जो मुक्त है, वही आत्मा प्रशस्त है।। ९१ ।।

निरातंकं निरालंबं निष्प्रपंचं निराश्रयम्।
निरामयं निराकारं तत्त्वं तत्त्वविदो विदुः ।। ९२ ।।

निरातंक (निर्भय), निरालम्ब (आलम्बन रहित), निष्प्रपंच (प्रपंच से भिन्न), निराश्रय (आश्रय रहित), निरामय (रोग रहित), निराकार (किसी भी प्रकार के आकार से रहित) स्वरूप वाला तत्व (आत्मा) है। तत्वविद् ऐसा जानते है।। ९२ ।।

शब्दाद्याः पंच या मात्रा यावत्कर्णादिषु स्मृताः।
तावदेव स्मृतं ध्यानं तत्समाधिरतः परम् ।। ९३ ।।

शब्द आदि (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) कर्ण आदि इन्द्रियों के विषय है। यहां तक स्मृति ध्यान है। इसके उपरान्त समाधि है।। ९३ ।।

यदा संक्षीयते प्राणो मानसं च विलीयते।
तदा समरसैकत्वं समाधिरभिधीयते ।। ९४ ।।

जब प्राण क्षीण हो जाते है, मन विलीन हो जाता है। तब समरसत्व (एकरसत्व) हो जाता है, वही समाधि है।। ९४।।

(श्लोक संख्या ९५ लुप्त है) ❁ ❁ ❁

धारणाः पंचनाड्यस्तु ध्यानं च षष्टिनाडिकाः।
दिनद्वादशकेनैव समाधिः प्राणसंयमः।। ९६।।

धारणा पांच नाड़ी (दण्ड-चौबीस मिनट का एक दण्ड या एक नाड़ी होती है)। और साठ नाड़ी तक ध्यान होता है। बारह दिनों तक समाधि होती है। यही तक प्राण-संयम होता है।। ९६।।

न गंधं न रसं रूपं न स्पर्शं न च निःस्वनम्।
आत्मानं न परं वेत्ति योगी युक्तः समाधिना।। ९७।।

जब योगी के समक्ष (उसके चित्त में) न गन्ध रहती है, न रस रहता है न रूप रहता है, न स्पर्श रहता है, न शब्द रहता है। और वह आत्मा से भिन्न कुछ भी नहीं जानता (देखता) तो यह समाधि है। (ऐसा होना समाधि में ही संभव है। और ऐसा योगी मुक्त योगी है।)।। ९७।।

खाद्यते न च कालेन बाध्यते न च कर्मणा।
साध्यते न च केनापि योगी युक्तः समाधिना।। ९८।।

समाधि से युक्त ऐसा योगी काल (मृत्यु) के द्वारा कवलित नहीं होता कर्म से बाधित नहीं होता, और किसी के द्वारा साधित भी नहीं होता।। ९८।।

निर्मलं निश्चलं नित्यं निष्क्रिय निर्गुणं महत्।
व्योमविज्ञानमानंदं ब्रह्म ब्रह्मविदो विदुः।। ९९।।

ब्रह्म निर्मल, निश्चल, नित्य, निष्क्रिय, महत् व्योम-रूप, विज्ञान-रूप आनन्द-रूप है। ब्रह्मविद् यह जानते है।। ९९।।

दुग्धे क्षीरं घृते सर्पिरग्नौ वह्निरिवार्पितः।
अद्वयत्वं व्रजेन्नित्यं योगवित्परमे पदे।। १००।।

जिस प्रकार दुग्ध में क्षीर, घृत में सर्पिस (घृत) और अग्नि में वह्निन्

अर्पित किया जाता है। (युग्म के दोनों शब्द एक ही अर्थ के द्योतक है) उसी प्रकार योगविद् परम पद में अद्वयभाव से नित्य निवास करते है।। १००।।

भवभयवने वह्निर्मुक्तिसोपानमार्गतः।
अद्वयत्वं व्रजेन्नित्यं योगवित्परमे पदे।। १०१।।

संसार के भय के जंगल में अग्नि के समान, मुक्ति के सोपान-मार्ग से परम पद में अवस्थित होकर योगविद् नित्य (निरन्तर) अद्वय रूप में रहते हैं।। १०१।।

।। इति श्री गोरक्षनाथप्रणीतः गोरक्षशतकम् समाप्तम्।।

●●●

PRINTED AT : SHIV SHAKTI PRESS,NAGPUR